



Kavya Setu

A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal

Impact Factor: 7.2

ISSN No: 3049-4176

लोकतंत्र के आध्यात्मिक एवं नैतिक आधारः भारतीय और पाश्चात्य चिंतन-परंपराओं का तुलनात्मक अध्ययन

पारस सिंगला

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, मार्गदर्शन अंतर्गत

सहायक प्राध्यापक डॉ. राजदीप कौर

राजनीति विज्ञान विभाग

सारांश

लोकतंत्र को सामान्यतः चुनाव, प्रतिनिधित्व, बहुमत, विधि-शासन और संस्थागत उत्तरदायित्व से जोड़कर समझा जाता है, किंतु उसकी स्थिरता केवल प्रक्रियात्मक व्यवस्थाओं से सुनिश्चित नहीं होती। लोकतांत्रिक जीवन के लिए व्यक्ति की गरिमा, स्वतंत्र विवेक, समान नैतिक मूल्य, बंधुत्व, संवाद, अहिंसा, सहिष्णुता और सार्वजनिक उत्तरदायित्व जैसी मान्यताएँ आवश्यक हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र इसी व्यापक अर्थ में लोकतंत्र के आध्यात्मिक एवं नैतिक आधारों का भारतीय और पाश्चात्य चिंतन-परंपराओं के संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन करता है। यहाँ 'आध्यात्मिक' का अर्थ किसी एक धर्म-संप्रदाय का राजनीतिक प्रभुत्व नहीं, बल्कि मनुष्य के अंतर्निहित मूल्य, आत्मसंयम, परस्पर संबद्धता, सत्य की खोज और निजी स्वार्थ से ऊपर उठकर लोकमंगल के प्रति प्रतिबद्धता है। भारतीय परंपरा में उपनिषदों की आत्म-एकता, बौद्ध करुणा और परस्पर-निर्भरता, जैन अनेकांतवाद, विवेकानंद की व्यावहारिक वेदांत-दृष्टि, गांधी का सत्य-अहिंसा और स्वराज, टैगोर का विश्वमानववाद, श्री अरविंद का आध्यात्मिक उत्क्रांतिवाद तथा आंबेडकर का स्वतंत्रता-समानता-बंधुत्व आधारित सामाजिक लोकतंत्र अध्ययन के प्रमुख आधार हैं। पाश्चात्य परंपरा में यूनानी नागरिक सद्गुण, लॉक के प्राकृतिक अधिकार, रूसो की सामान्य इच्छा, मिल की स्वतंत्रता, टॉकविल की नागरिक सहभागिता, ड्यूई का लोकतंत्र को सहजीवन की पद्धति मानना, रॉल्स का न्याय तथा हैबरमास का संवादात्मक विवेक केंद्रीय संदर्भ हैं। अध्ययन व्याख्यात्मक, तुलनात्मक और आलोचनात्मक पद्धति पर आधारित है। निष्कर्षतः दोनों परंपराएँ इस बात पर सहमत दिखाई देती हैं कि लोकतंत्र एक नैतिक संस्कृति के बिना खोखला हो सकता है। भारतीय दृष्टि आत्मानुशासन, करुणा, अहिंसा और सामाजिक बंधुत्व पर विशेष बल देती है, जबकि पाश्चात्य आधुनिकता अधिकारों, संस्थाओं, सार्वजनिक तर्क और वैधानिक समानता को विकसित करती है। समकालीन लोकतंत्र के लिए इन दोनों की रचनात्मक संगति—आंतरिक नैतिक रूपांतरण तथा बाह्य संस्थागत नियंत्रण—अधिक उपयुक्त आधार प्रस्तुत करती है।

मुख्य शब्द: लोकतंत्र, आध्यात्मिकता, नैतिकता, स्वराज, बंधुत्व, नागरिक सद्गुण, सार्वजनिक विवेक, तुलनात्मक राजनीतिक चिंतन।



Kavya Setu

A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal

Impact Factor: 7.2

ISSN No: 3049-4176

1. प्रस्तावना

लोकतंत्र का शाब्दिक अर्थ जनता का शासन है, परंतु जनता की सत्ता तभी लोकतांत्रिक बनती है जब वह प्रत्येक व्यक्ति की समान गरिमा स्वीकार करे और शक्ति को न्यायपूर्ण सीमाओं में बाँधे। चुनाव लोकतंत्र की आवश्यक शर्त है, पर्याप्त शर्त नहीं। भय, घृणा, असमानता, मिथ्या सूचना और संस्थागत अविश्वास से ग्रस्त समाज में चुनावी ढाँचा मौजूद रह सकता है, किंतु लोकतांत्रिक आत्मा क्षीण हो सकती है। इसलिए लोकतंत्र की दार्शनिक जाँच हमें उसके दृश्य संस्थानों से आगे उन अदृश्य नैतिक धारणाओं तक ले जाती है जिन पर नागरिक विश्वास, संयम और सहयोग आधारित हैं।

आधुनिक राजनीतिक सिद्धांत में लोकतंत्र की प्रक्रियात्मक व्याख्या सत्ता प्राप्ति की प्रतिस्पर्धी विधि, मतदान और प्रतिनिधित्व पर केंद्रित रही है। इसके विपरीत मानकवादी परंपरा लोकतंत्र को समानता, स्वतंत्रता, न्याय और सार्वजनिक हित के मूल्य से जोड़ती है। संयुक्त राष्ट्र भी लोकतंत्र को मानवाधिकार, विकास, शांति और सुरक्षा से संबद्ध मूल मूल्य के रूप में प्रस्तुत करता है। इस व्यापक समझ से स्पष्ट है कि लोकतंत्र संस्था और संस्कृति, दोनों है। संविधान नागरिक स्वतंत्रता दे सकता है, किंतु नागरिकों और शासकों में सत्यनिष्ठा, सहिष्णुता तथा परस्पर सम्मान न हो तो उसके प्रावधान निष्प्रभावी हो सकते हैं।

‘आध्यात्मिक आधार’ पद का प्रयोग सावधानी चाहता है। इसका तात्पर्य धर्मतंत्र, पुरोहितवादी अधिकार या बहुसंख्यक धार्मिक पहचान को राज्य पर आरोपित करना नहीं है। यहाँ आध्यात्मिकता मनुष्य में निहित मूल्य, आत्म-परिष्कार, अंतःकरण की स्वतंत्रता, जीवन की परस्पर संबद्धता और लोकहित की चेतना का द्योतक है। ऐसी आध्यात्मिकता धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र की विरोधी नहीं, बल्कि उसकी नैतिक ऊर्जा हो सकती है, बशर्ते वह विवेक, समान नागरिकता और बहुलता का सम्मान करे।

समकालीन लोकतंत्र एक द्वंद्व से गुजर रहे हैं। एक ओर संवैधानिक अधिकारों और सार्वभौमिक मताधिकार का विस्तार हुआ है; दूसरी ओर सार्वजनिक विमर्श में ध्रुवीकरण, असत्य, व्यक्तिपूजा, उपभोक्तावाद, सामाजिक बहिष्कार और सत्ता के केंद्रीकरण की प्रवृत्तियाँ बढ़ी हैं। यह संकट बताता है कि संस्थागत संरचना को टिकाए रखने के लिए नैतिक नागरिकता आवश्यक है। भारतीय विमर्श में राजनीति और अध्यात्म का संबंध प्रायः गांधी तक सीमित कर दिया जाता है, जबकि उपनिषद, बौद्ध-जैन परंपरा, विवेकानंद, टैगोर, अरविंद और आंबेडकर इसके विविध तथा कभी-कभी परस्पर आलोचनात्मक रूप प्रस्तुत करते हैं।

पाश्चात्य चिंतन को भी केवल व्यक्तिवाद या धर्मनिरपेक्ष तर्कवाद कह देना सरलीकरण होगा। प्लेटो और अरस्तू से लेकर टॉकविल और ड्यूई तक नागरिक चरित्र तथा साझा जीवन का प्रश्न उपस्थित है; लॉक और मिल अंतःकरण तथा स्वतंत्रता की रक्षा करते हैं; रॉल्स और हैबरमास बहुल समाज में न्यायोचित सार्वजनिक तर्क की शर्तें विकसित करते हैं। समस्या यह है कि दोनों परंपराओं के बीच समानताओं, भिन्नताओं और अंतर्विरोधों को एक ऐसी तुलनात्मक रूपरेखा में समझा जाए जो न तो सांस्कृतिक श्रेष्ठता का दावा करे और न ऐतिहासिक भेदों को मिटाए।



Kavya Setu

A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal

Impact Factor: 7.2

ISSN No: 3049-4176

2. लोकतंत्र, अध्यात्म और नैतिकता: अवधारणात्मक रूपरेखा

2.1 लोकतंत्र का प्रक्रियात्मक और सारभूत अर्थ

प्रक्रियात्मक लोकतंत्र शासन बदलने की शांतिपूर्ण विधि, स्वतंत्र चुनाव, प्रतिस्पर्धी दल, बहुमत-निर्णय और जवाबदेही पर बल देता है। सारभूत लोकतंत्र पूछता है कि निर्णय कितने न्यायपूर्ण हैं, अल्पसंख्यकों की स्वतंत्रता कितनी सुरक्षित है और संसाधनों तथा सम्मान तक पहुँच कितनी समान है। दोनों को अलग नहीं किया जा सकता। बिना प्रक्रिया के नैतिक आदर्श सत्ता की मनमानी बन सकता है; बिना नैतिक उद्देश्य के प्रक्रिया बहुमतवादी वर्चस्व में बदल सकती है। अतः लोकतंत्र को विधि-सम्मत सत्ता और समान नैतिक सदस्यता की संयुक्त व्यवस्था मानना अधिक उचित है।

2.2 आध्यात्मिकता का सार्वजनिक अर्थ

लोकतांत्रिक संदर्भ में आध्यात्मिकता के चार आयाम पहचाने जा सकते हैं। पहला, प्रत्येक व्यक्ति की अपरिवर्तनीय गरिमा; दूसरा, अहं और निजी स्वार्थ की सीमा पहचानने वाला आत्मसंयम; तीसरा, दूसरों के दुःख और आकांक्षा के प्रति करुणामय संवेदनशीलता; और चौथा, सत्य को अंतिम निजी संपत्ति न मानकर संवाद तथा आत्म-संशोधन की तत्परता। ये आयाम आस्तिक और अनास्तिक दोनों नैतिक दृष्टियों में संभव हैं। बौद्ध करुणा या आंबेडकर का नवयान ईश्वर-केंद्रित न होते हुए भी गहरी आध्यात्मिक-नैतिक राजनीति का आधार बनते हैं।

2.3 नैतिकता और लोकतांत्रिक चरित्र

नैतिकता आचरण के उन मानदंडों का विवेचन है जिनसे उचित-अनुचित, न्याय-अन्याय और उत्तरदायित्व का निर्णय होता है। लोकतांत्रिक नैतिकता में साध्य और साधन दोनों महत्वपूर्ण हैं। समानता का लक्ष्य हिंसक अपमान से प्राप्त हो तो वह नई अधीनता पैदा कर सकता है; शांति का लक्ष्य अन्यायपूर्ण मौन पर आधारित हो तो वह लोकतांत्रिक नहीं। गांधी साधन की शुद्धता पर बल देते हैं, जबकि संवैधानिक परंपरा वैध प्रक्रिया और अधिकार-सुरक्षा को अनिवार्य मानती है। दोनों मिलकर सत्ता के नैतिक परिणाम और उसके प्रयोग की पद्धति की जाँच करते हैं।

2.4 बंधुत्व: अध्यात्म और राजनीति के बीच सेतु

स्वतंत्रता व्यक्ति को स्वायत्तता देती है और समानता उसे तुल्य नागरिक दर्जा; परंतु बंधुत्व नागरिकों को एक-दूसरे की स्वतंत्रता और समानता की रक्षा के लिए प्रेरित करता है। बंधुत्व भावुक एकरूपता नहीं, बल्कि भिन्न व्यक्तियों के साझा राजनीतिक समुदाय की नैतिक मान्यता है। आंबेडकर ने इसे लोकतंत्र की सामाजिक भूमि माना। ड्यूई के 'साझे अनुभव' तथा हैबरमास के संवादात्मक सार्वजनिक क्षेत्र में भी यही संबंध अन्य भाषा में उपस्थित है। बंधुत्व आध्यात्मिक इसलिए है कि वह स्वयं को पृथक और पूर्ण मानने के अहंकार का अतिक्रमण करता है; राजनीतिक इसलिए है कि वह समान नागरिकता को व्यवहार में संभव बनाता है।

2.5 धर्मनिरपेक्षता और आध्यात्मिक लोकतंत्र

आध्यात्मिक लोकतंत्र का अर्थ राज्य द्वारा किसी धार्मिक सत्य की स्थापना नहीं। लोकतांत्रिक राज्य को अंतःकरण की स्वतंत्रता, धार्मिक समानता और गैर-विश्वासी नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करनी



Kavya Setu

A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal

Impact Factor: 7.2

ISSN No: 3049-4176

चाहिए। सार्वजनिक निर्णय ऐसे कारणों पर आधारित होने चाहिए जिन्हें विभिन्न आस्थाओं वाले नागरिक समझ और परख सकें। आध्यात्मिक परंपराएँ सार्वजनिक जीवन को करुणा, सत्यनिष्ठा और सेवा की प्रेरणा दे सकती हैं, पर उनके दावों को संवैधानिक अधिकारों और सार्वजनिक विवेक की कसौटी पर उत्तरदायी रहना होगा।

3. भारतीय चिंतन में आध्यात्मिक लोकतंत्र के स्रोत

3.1 उपनिषद: आत्म-एकता और मानव गरिमा

उपनिषदों का केंद्रीय आग्रह बाह्य विविधता के भीतर अस्तित्वगत एकता की खोज है। 'आत्मा' को व्यापक सत्य से संबद्ध मानने पर दूसरे मनुष्य को केवल साधन या शत्रु के रूप में देखना नैतिक रूप से कठिन हो जाता है। आधुनिक लोकतांत्रिक समानता सीधे उपनिषदों से उत्पन्न नहीं हुई; प्राचीन समाज में पदानुक्रम भी विद्यमान थे। फिर भी आत्म-एकता की व्याख्या प्रत्येक व्यक्ति में अंतर्निहित मूल्य, सहानुभूति और अहिंसा के लिए आध्यात्मिक आधार दे सकती है। विवेकानंद ने इसी विचार को 'जीव-सेवा' और व्यावहारिक वेदांत की दिशा में विस्तृत किया।

इस स्रोत की आलोचनात्मक सीमा भी स्पष्ट है। दार्शनिक स्तर की एकता सामाजिक समानता में स्वतः परिवर्तित नहीं होती। यदि आत्मिक समता के साथ जातिगत, लैंगिक या आर्थिक विषमता बनी रहे तो आध्यात्मिक भाषा यथास्थिति को ढक सकती है। इसलिए उपनिषद की एकता को आंबेडकर की सामाजिक न्याय और संवैधानिक समानता की कसौटी से जोड़ना आवश्यक है।

3.2 बौद्ध धम्म: करुणा, प्रज्ञा और परस्पर-निर्भरता

बौद्ध दृष्टि स्थायी अहं के आग्रह को चुनौती देती है और दुःख, करुणा तथा परस्पर-निर्भरता पर बल देती है। लोकतांत्रिक नैतिकता के लिए इसका महत्त्व यह है कि नागरिक अपनी इच्छा को अंतिम सत्य न मानकर दूसरों के दुःख और कारणों को समझने का प्रयास करे। करुणा नीतिगत निर्णय में कमजोर समूहों की स्थिति देखने की क्षमता देती है; प्रज्ञा अंधविश्वास और आवेग के स्थान पर परीक्षण तथा आत्म-संशोधन को प्रोत्साहित करती है; मध्यम मार्ग कट्टर ध्रुवीकरण से बचने की प्रवृत्ति विकसित करता है। संघ की प्रारंभिक प्रक्रियाओं में चर्चा, नियम और सामूहिक निर्णय के तत्वों को अनेक विद्वान सहभागी संस्कृति के संकेत के रूप में देखते हैं, यद्यपि उन्हें आधुनिक सार्वभौमिक लोकतंत्र कहना अनैतिहासिक होगा। आंबेडकर ने बौद्ध धम्म को स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की नैतिक भाषा में पुनर्पाठ किया। उनके लिए धर्म का मूल्य ईश्वर-संबंधी सिद्धांत से अधिक उस सामाजिक नैतिकता में था जो मनुष्य को मनुष्य के प्रति न्यायपूर्ण बनाती है (आंबेडकर, 1957/2011)।

3.3 जैन अनेकांतवाद और अहिंसा

जैन अनेकांतवाद यह सिखाता है कि वास्तविकता के बारे में मानवीय कथन आंशिक दृष्टि से निर्मित होते हैं। इसका लोकतांत्रिक अर्थ यह नहीं कि सभी दावे समान रूप से सत्य हैं, बल्कि यह कि अपनी दृष्टि की सीमा स्वीकार कर विरोधी मत को सुनना विवेकपूर्ण है। अहिंसा केवल शारीरिक हिंसा से परहेज नहीं, भाषा, विचार और संस्थागत व्यवहार में अनावश्यक आघात को कम करने की साधना भी है। बहुल



Kavya Setu

A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal

Impact Factor: 7.2

ISSN No: 3049-4176

समाज में अनेकांतवाद असहमति को शत्रुता बनने से रोकने और तर्कपूर्ण सह-अस्तित्व के लिए विनम्रता प्रदान कर सकता है।

4. आधुनिक भारतीय चिंतन में लोकतंत्र के नैतिक आधार

4.1 स्वामी विवेकानंद: व्यावहारिक वेदांत और मानवीय शक्ति

विवेकानंद ने मनुष्य में निहित दिव्यता को सामाजिक सेवा और आत्मविश्वास से जोड़ा। उनके लिए धर्म निष्क्रिय कर्मकांड नहीं, मनुष्य की अंतर्निहित शक्ति का जागरण था। लोकतांत्रिक दृष्टि से यह विचार दो योगदान देता है। पहला, वह गरीब और वंचित व्यक्ति को दया का निष्क्रिय पात्र नहीं, गरिमा और क्षमता से युक्त मनुष्य मानता है। दूसरा, शिक्षा को सूचना-संचय के बजाय चरित्र, निर्भयता और स्वावलंबन के निर्माण की प्रक्रिया बनाता है। ऐसी शिक्षा लोकतंत्र को मतदान से आगे सक्रिय नागरिकता में रूपांतरित कर सकती है (विवेकानंद, 1989)।

फिर भी व्यावहारिक वेदांत को समावेशी बनाने के लिए सामाजिक शक्ति-संबंधों की ठोस समीक्षा आवश्यक है। व्यक्तिगत चरित्र पर बल पर्याप्त नहीं यदि संस्थाएँ अवसरों को असमान बाँटती हों। विवेकानंद की मानव-गरिमा को आंबेडकर के संरचनात्मक न्याय के साथ पढ़ने पर आध्यात्मिक सशक्तीकरण और सामाजिक परिवर्तन की अधिक संतुलित दृष्टि मिलती है।

4.2 रवीन्द्रनाथ टैगोर: स्वतंत्र व्यक्तित्व और विश्वमानववाद

टैगोर ने आक्रामक राष्ट्रवाद की आलोचना करते हुए मनुष्य की सृजनात्मक स्वतंत्रता और विश्वमानवीय संबंध पर बल दिया। उनके लिए राष्ट्र यदि यांत्रिक शक्ति-संगठन बन जाए तो वह जीवंत समाज, संस्कृति और नैतिक कल्पना को कुचल सकता है (टैगोर, 1917/2017)। लोकतंत्र को केवल राष्ट्रीय बहुमत की इच्छा मानने के विरुद्ध टैगोर का विचार चेतावनी देता है: व्यक्ति की रचनात्मकता, सांस्कृतिक विविधता और मानवता के व्यापक दायित्वों की रक्षा आवश्यक है।

टैगोर की शिक्षा-दृष्टि प्रकृति, कला, संवाद और अंतर-सांस्कृतिक संवेदना को जोड़ती है। लोकतांत्रिक नागरिकता के लिए इसका अर्थ है कि शिक्षा केवल आज्ञापालन या परीक्षा की तैयारी न कराए, बल्कि कल्पनाशील सहानुभूति विकसित करे। दूसरी संस्कृति को भय या रूढ़ छवि से नहीं, जीवंत अनुभव से समझने की क्षमता बहुल लोकतंत्र का महत्वपूर्ण आध्यात्मिक गुण है।

4.3 श्री अरविंद: चेतना का विकास और मानव एकता

श्री अरविंद ने मानव समाज को चेतना के क्रमिक विकास की प्रक्रिया में देखा। उनकी दृष्टि में व्यक्तिवाद ने स्वतंत्रता को विकसित किया, पर उसका पूर्णत्व ऐसी आध्यात्मिक सामुदायिकता में है जो व्यक्ति को मिटाए बिना व्यापक एकता स्थापित करे (अरविंद, 1997)। लोकतांत्रिक अर्थ में यह दृष्टि यांत्रिक सामूहिकता और स्वार्थपूर्ण व्यक्तिवाद दोनों की सीमा बताती है।

अरविंद का आदर्श तत्काल संस्थागत कार्यक्रम नहीं, दीर्घकालिक नैतिक-मानवीय दिशा है। इसकी शक्ति भविष्यदृष्टि और मानव एकता में है; सीमा यह है कि चेतना-विकास की भाषा सामाजिक संघर्ष और संसाधन-वितरण की तात्कालिक समस्याओं को पर्याप्त ठोस रूप में संबोधित नहीं करती। इसलिए उसे



Kavya Setu

A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal

Impact Factor: 7.2

ISSN No: 3049-4176

अधिकार, प्रतिनिधित्व और सामाजिक न्याय की संस्थागत रूपरेखा का विकल्प नहीं, प्रेरक पूरक मानना चाहिए।

5. गांधी का नैतिक-आध्यात्मिक लोकतंत्र

5.1 सत्य, अहिंसा और साधन-साध्य की एकता

गांधी के राजनीतिक चिंतन में सत्य अंतिम नैतिक दिशा है और अहिंसा उसकी खोज की पद्धति। मनुष्य सत्य को पूर्णतः नहीं पकड़ सकता, इसलिए विरोधी के मत में सत्यांश की संभावना स्वीकार करनी चाहिए। यह ज्ञानात्मक विनम्रता लोकतांत्रिक असहमति का गहरा आधार है। अहिंसा विरोध का निषेध नहीं; वह अन्याय का सक्रिय प्रतिरोध है, पर विरोधी की मानवीय गरिमा को नष्ट किए बिना। इस प्रकार सत्याग्रह नागरिक अवज्ञा, आत्मबल और सार्वजनिक उत्तरदायित्व को जोड़ता है।

गांधी का साधन-साध्य सिद्धांत लोकतंत्र को नैतिक सीमा देता है। यदि स्वतंत्रता हिंसा, छल और अपमान से प्राप्त की जाए तो नई व्यवस्था उन्हीं प्रवृत्तियों को पुनरुत्पादित करेगी। राजनीतिक लक्ष्य और राजनीतिक प्रक्रिया में समान नैतिक तर्क होना चाहिए। मेहता (2010) दिखाते हैं कि गांधी के लिए नैतिक कर्म का आधार निर्भयता है और उसकी प्रयोगशाला दैनिक जीवन है; लोकतंत्र केवल संसद में नहीं, परिवार, ग्राम, श्रम और पड़ोसी संबंधों में निर्मित होता है।

5.2 स्वराज: बाहरी शासन से आत्मशासन तक

‘हिंद स्वराज’ में स्वराज का अर्थ केवल विदेशी शासन का अंत नहीं, बल्कि व्यक्ति और समुदाय की आत्म-नियंत्रित स्वतंत्रता है (गांधी, 1909/2010)। जो नागरिक लोभ, भय, घृणा या अनुकरण का दास है, वह राजनीतिक अधिकार मिलने पर भी वास्तविक रूप से स्वतंत्र नहीं। इसलिए स्वराज में आत्मसंयम, कर्तव्य, स्थानीय सहभागिता और सत्ता के विकेंद्रीकरण का महत्त्व है। ग्राम स्वराज का आदर्श नागरिक को दूरस्थ राज्य का निष्क्रिय प्रजा न बनाकर निर्णय-प्रक्रिया का सहभागी मानता है।

गांधी आधुनिक प्रतिनिधि संस्थाओं के प्रति संशय रखते थे क्योंकि वे राजनीति को पेशेवर सत्ता-स्पर्धा और नैतिक उत्तरदायित्व से विमुख कर सकती हैं। मंतैना (2012) के अनुसार गांधी केंद्रीकृत राज्य की हिंसात्मक प्रवृत्ति की आलोचना करते हुए किसान-स्वराज और बहुल सामाजिक संघों की क्षमता पर बल देते हैं। यह आलोचना आज भी नौकरशाही दूरी, दलगत अनुशासन और नागरिक निष्क्रियता के संदर्भ में प्रासंगिक है।

5.3 सर्वोदय, ट्रस्टीशिप और अंतिम व्यक्ति

सर्वोदय सबके उत्थान की धारणा है, किंतु गांधी की नैतिक कसौटी अंतिम और सबसे कमजोर व्यक्ति की स्थिति है। आर्थिक संपत्ति को पूर्ण निजी अधिकार के स्थान पर सामाजिक न्यास मानने वाली ट्रस्टीशिप स्वैच्छिक नैतिक उत्तरदायित्व पर बल देती है। इसकी प्रेरणा असमानता के विरुद्ध है, पर इसकी सीमा यह है कि वह संरचनात्मक पुनर्वितरण और बाध्यकारी न्याय को नैतिक परिवर्तन पर अधिक निर्भर करती है। लोकतंत्र में सेवा और स्वैच्छिक संयम महत्त्वपूर्ण हैं, किंतु श्रम-अधिकार, कर और कल्याणकारी संस्थाएँ भी आवश्यक हैं।



Kavya Setu

A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal

Impact Factor: 7.2

ISSN No: 3049-4176

5.4 गांधीवादी दृष्टि की आलोचनात्मक समीक्षा

गांधी की शक्ति राजनीति को नैतिकता से जोड़ने, अहिंसक प्रतिरोध को जनसुलभ बनाने और साधनों की समीक्षा करने में है। किंतु ग्राम, परंपरा और सामंजस्य का आदर्श जातिगत प्रभुत्व को पर्याप्त रूप से चुनौती न दे तो वह वंचितों के लिए दमनकारी हो सकता है। यहीं आंबेडकर की आलोचना गांधीवादी नैतिकता को आवश्यक संस्थागत और सामाजिक न्याय की कसौटी प्रदान करती है।

6. आंबेडकर: सामाजिक लोकतंत्र और संवैधानिक नैतिकता

6.1 राजनीतिक लोकतंत्र की सामाजिक भूमि

आंबेडकर के लिए लोकतंत्र केवल शासन का रूप नहीं, 'संबद्ध जीवन' की ऐसी पद्धति है जिसमें लोग एक-दूसरे के अनुभव में भाग लेते हैं। राजनीतिक समानता टिक नहीं सकती यदि समाज जाति-आधारित ऊँच-नीच, बहिष्कार और वंशानुगत विशेषाधिकार पर संगठित हो। 'जाति का विनाश' में उन्होंने धार्मिक-सामाजिक प्राधिकार की आलोचना करते हुए स्पष्ट किया कि सुधार केवल सद्भावना से नहीं, असमानता को वैधता देने वाली संरचनाओं के परिवर्तन से होगा (आंबेडकर, 1936/2014)।

यह दृष्टि आध्यात्मिक एकता के अमूर्त दावे को सामाजिक यथार्थ की कसौटी पर जाँचती है। यदि सभी में एक आत्मा मानने वाला समाज अस्पृश्यता स्वीकार करता है, तो दर्शन और व्यवहार का विरोध उजागर होता है। आंबेडकर की लोकतांत्रिक नैतिकता सम्मान, सहभागिता और अवसर की ठोस समानता चाहती है। इसीलिए उनके लिए संविधान केवल विधिक दस्तावेज नहीं, सामाजिक क्रांति का साधन था।

6.2 स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व

आंबेडकर ने स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व को पृथक आदर्श नहीं, त्रयी माना। स्वतंत्रता बिना समानता कुछ लोगों के प्रभुत्व को जन्म दे सकती है; समानता बिना स्वतंत्रता व्यक्तिगत पहल को दबा सकती है; और बंधुत्व के बिना दोनों को लागू रखने के लिए निरंतर पुलिस-बल की आवश्यकता होगी। बंधुत्व नागरिकों में इस नैतिक मान्यता को जगाता है कि दूसरे की स्वतंत्रता और समानता मेरी अपनी राजनीतिक दुनिया का हिस्सा है।

आंबेडकर ने इस त्रयी की आध्यात्मिक जड़ बौद्ध धम्म में देखी। धम्म का उद्देश्य परलोक संबंधी अनुष्ठान नहीं, मनुष्यों के बीच न्यायपूर्ण संबंध है। 'द बुद्धा एंड हिज धम्म' में नैतिकता, प्रज्ञा और करुणा सामाजिक मुक्ति से जुड़ते हैं (आंबेडकर, 1957/2011)। इस रूप में आध्यात्मिकता सामाजिक समानता का विकल्प नहीं, उसकी नैतिक प्रेरणा है।

6.3 संवैधानिक नैतिकता

संवैधानिक नैतिकता लिखित नियमों से आगे उन संयमों, अभ्यस्त प्रक्रियाओं और सार्वजनिक मूल्यों का नाम है जिनसे सत्ता संविधान की भावना के अनुरूप चलती है। इसमें असहमति का सम्मान, विधि के प्रति निष्ठा, अल्पसंख्यक अधिकार, संस्थागत मर्यादा और व्यक्तिपूजा से दूरी शामिल हैं। केवल अच्छे संविधान से अच्छे परिणाम की गारंटी नहीं; उसे चलाने वाले नागरिकों और पदाधिकारियों का चरित्र निर्णायक है।



Kavya Setu

A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal

Impact Factor: 7.2

ISSN No: 3049-4176

6.4 गांधी और आंबेडकर का रचनात्मक तनाव

गांधी आत्मपरिवर्तन, अहिंसा, कर्तव्य और स्थानीय समुदाय पर बल देते हैं; आंबेडकर अधिकार, सामाजिक संरचना, प्रतिनिधित्व और संवैधानिक शक्ति पर। गांधी की नैतिक राजनीति संस्थाओं को मानवीय आत्मा देती है, जबकि आंबेडकर की न्याय-दृष्टि नैतिक सद्भावना को उत्तरदायी नियमों में बदलती है। समन्वय तभी संभव है जब अहिंसा अन्याय के विरुद्ध सक्रिय हो, समुदाय व्यक्ति के अधिकार को न कुचले, और संविधान नागरिक बंधुत्व से पोषित हो।

7. पाश्चात्य चिंतन में लोकतंत्र के नैतिक स्रोत

7.1 प्लेटो: आत्म-शासन और न्याय का प्रश्न

प्लेटो लोकतंत्र के समर्थक आधुनिक अर्थ में नहीं थे। 'रिपब्लिक' में उन्होंने अनियंत्रित इच्छाओं, जन-प्रलोभन और अयोग्य नेतृत्व से लोकतंत्र के पतन की आशंका व्यक्त की (प्लेटो, 1992)। फिर भी उनका न्याय-विमर्श लोकतंत्र के नैतिक आधार के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न उठाता है: क्या नागरिक स्वतंत्रता आत्मसंयम के बिना टिक सकती है? क्या शिक्षा केवल कौशल दे या सत्य और शुभ की पहचान भी विकसित करे? प्लेटो का उत्तर अभिजात दार्शनिक शासन की ओर जाता है, जिसे लोकतंत्र स्वीकार नहीं कर सकता; पर उनकी चेतावनी बताती है कि इच्छा की स्वतंत्रता और विवेकपूर्ण आत्म-शासन में भेद है।

7.2 अरस्तू: नागरिक सद्गुण और साझा हित

अरस्तू ने मनुष्य को राजनीतिक प्राणी माना और राजनीति का उद्देश्य केवल जीवन-रक्षा नहीं, उत्तम जीवन बताया। 'पॉलिटिक्स' में शासन-रूपों का मूल्यांकन इस आधार पर है कि वे साझा हित की सेवा करते हैं या शासक वर्ग के निजी हित की (अरस्तू, 1998)। नागरिकता निर्णय और न्याय की प्रक्रिया में भागीदारी है; इसलिए नागरिक सद्गुण लोकतांत्रिक व्यवस्था की व्यावहारिक शर्त बनता है।

अरस्तू की ऐतिहासिक सीमाएँ गंभीर हैं: स्त्रियों, दासों और अनेक श्रमिकों को पूर्ण नागरिकता से बाहर रखा गया। आधुनिक लोकतंत्र उनकी बहिष्कारी नागरिकता को अस्वीकार करता है, किंतु सहभागिता, मध्यम वर्ग, विधि-शासन और सामान्य हित पर उनका बल आज भी उपयोगी है। भारतीय लोकमंगल और पाश्चात्य 'कॉमन गुड' यहाँ संवाद कर सकते हैं, पर साझा हित की परिभाषा बहुल नागरिकों की समान आवाज से ही वैध होगी।

7.3 ईसाई नैतिक परंपरा और समान मानवीय मूल्य

पाश्चात्य लोकतंत्र के विकास में यूनानी तर्क, रोमन विधि, ईसाई नैतिकता, सुधार आंदोलन और प्रबोधन सभी का योगदान है। ईसाई विचार में ईश्वर के समक्ष आत्माओं की समानता, पड़ोसी-प्रेम और अंतःकरण का महत्व मानवीय गरिमा की भाषा को प्रभावित करता है। साथ ही चर्च और राज्य के गठबंधनों, धार्मिक युद्धों तथा असहिष्णुता ने यह भी दिखाया कि आध्यात्मिक सत्य का राजनीतिक एकाधिकार स्वतंत्रता के लिए संकट बन सकता है।

आधुनिक धर्मनिरपेक्षता इस इतिहास से अंतःकरण की स्वतंत्रता और संस्थागत पृथक्करण की सीख लेती है। इसका उद्देश्य धर्म को निजी मौन में बंद करना नहीं, बल्कि राज्य को किसी एक धार्मिक पहचान का



Kavya Setu

A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal

Impact Factor: 7.2

ISSN No: 3049-4176

उपकरण बनने से रोकना है। लोकतंत्र धार्मिक और गैर-धार्मिक नैतिक प्रेरणाओं को सार्वजनिक संवाद में स्थान दे सकता है, बशर्ते वे समान नागरिकता तथा तर्कसंगत आलोचना को स्वीकार करें।

8. स्वतंत्रता, नागरिक संघ और लोकतांत्रिक शिक्षा

8.1 जॉन स्टुअर्ट मिल: व्यक्तित्व और विचार-स्वतंत्रता

मिल ने 'ऑन लिबर्टी' में व्यक्ति की स्वतंत्रता को सत्य की खोज, व्यक्तित्व-विकास और सामाजिक प्रगति से जोड़ा (मिल, 1859/2003)। उनका हानि-सिद्धांत बताता है कि व्यक्ति की स्वतंत्रता पर बलपूर्वक रोक मुख्यतः तब उचित है जब उसके आचरण से दूसरों को हानि हो। बहुमत का सामाजिक दबाव भी राज्य की तरह दमनकारी हो सकता है; इसलिए अलोकप्रिय मत और जीवन-पद्धति की रक्षा लोकतंत्र की कसौटी है।

विचार-स्वतंत्रता का नैतिक आधार मानवीय अपूर्णता है। दबाया गया मत सत्य हो सकता है; आंशिक सत्य हो सकता है; या गलत होकर भी स्वीकृत सत्य को जीवंत तर्क में बदल सकता है। यह तर्क गांधी की सत्य-संबंधी विनम्रता और जैन अनेकांतवाद से रोचक समानता रखता है। अंतर यह है कि मिल इसे व्यक्तिगत स्वतंत्रता और उपयोगितावादी प्रगति की भाषा में रखते हैं, जबकि भारतीय परंपराएँ इसे आत्मसंयम, अहिंसा या अस्तित्वगत बहुलता से जोड़ सकती हैं।

8.2 टॉकविल: समानता, संघ और लोकतांत्रिक आदतें

टॉकविल ने लोकतंत्र को केवल संविधान नहीं, सामाजिक दशा और नागरिक आदतों के रूप में देखा। 'डेमोक्रेसी इन अमेरिका' में स्थानीय स्वशासन, स्वैच्छिक संघ, प्रेस और धार्मिक नैतिकता को स्वतंत्रता की रक्षा करने वाली मध्यवर्ती शक्तियों के रूप में रेखांकित किया (टॉकविल, 1835-1840/2000)। नागरिक संघ लोगों को निजी जीवन की सीमाओं से बाहर सहयोग, नेतृत्व और सार्वजनिक समस्या-समाधान सीखने का अवसर देते हैं।

टॉकविल की 'बहुमत की तानाशाही' संबंधी चेतावनी आज विशेष प्रासंगिक है। संख्यात्मक बहुमत यदि सामाजिक अनुरूपता और संस्थागत नियंत्रण दोनों पर अधिकार कर ले तो औपचारिक लोकतंत्र में भी स्वतंत्र विवेक दब सकता है। भारतीय ग्राम-समुदाय के संदर्भ में भी यही प्रश्न है: स्थानीयता सहभागिता बढ़ा सकती है, पर जाति या बहुसंख्यक प्रभुत्व को भी मजबूत कर सकती है। इसलिए स्थानीय स्वशासन को मौलिक अधिकार और न्यायिक संरक्षण से संतुलित करना चाहिए।

8.3 जॉन ड्यूई: लोकतंत्र एक सहजीवन-पद्धति

ड्यूई ने लोकतंत्र को सरकार के रूप से अधिक 'संबद्ध जीवन' और संयुक्त अनुभव की पद्धति माना (ड्यूई, 1916/2004)। शिक्षा लोकतंत्र की तैयारी भर नहीं; विद्यालय स्वयं संवाद, सहयोग, समस्या-समाधान और अनुभव-साझेदारी का लोकतांत्रिक समुदाय होना चाहिए। ज्ञान स्थिर मत का संग्रह नहीं, अनुभव की जाँच और पुनर्निर्माण है।

ड्यूई का प्रयोगवादी दृष्टिकोण आध्यात्मिक लोकतंत्र को अलौकिक सिद्धांत से अलग सार्वजनिक अभ्यास में स्थापित करता है। आत्म-संशोधन, खुला संवाद और साझा समस्या-समाधान वे नागरिक गुण हैं जिन्हें गांधी सत्य-प्रयोग, बौद्ध प्रज्ञा और जैन अनेकांतवाद भिन्न दार्शनिक भाषाओं में समर्थन देते हैं।

9. भारतीय और पाश्चात्य परंपराओं का तुलनात्मक विश्लेषण

तालिका 1: लोकतंत्र के आध्यात्मिक एवं नैतिक आधारों की तुलनात्मक रूपरेखा

तुलना का आयाम	भारतीय चिंतन में प्रमुख प्रवृत्ति	पाश्चात्य चिंतन में प्रमुख प्रवृत्ति
मानव गरिमा	आत्म-एकता, दिव्यता, करुणा और धम्म	प्राकृतिक अधिकार, नैतिक स्वायत्तता और समान नागरिकता
स्वतंत्रता	स्वराज, आत्मसंयम और आंतरिक मुक्ति	अधिकार, गैर-हस्तक्षेप, व्यक्तित्व और आत्म-विधान
समानता	आध्यात्मिक समता; बौद्ध और आंबेडकरी सामाजिक बंधुत्व	कानूनी-राजनीतिक समानता और निष्पक्ष संस्थाएँ
नैतिक पद्धति	अहिंसा, सत्य, करुणा, सेवा और साधन-साध्य एकता	सार्वजनिक तर्क, अधिकार-सम्मान, न्याय और नागरिक सद्गुण
समुदाय	लोकमंगल, परस्पर-निर्भरता और स्थानीय सहभागिता	सामाजिक अनुबंध, नागरिक संघ और सार्वजनिक क्षेत्र
मुख्य जोखिम	आध्यात्मिक समता से सामाजिक विषमता ढकना; समुदायवाद	अत्यधिक व्यक्तिवाद; औपचारिक समानता में वास्तविक विषमता
संस्थागत बल	गांधी में विकेंद्रीकरण; आंबेडकर में संविधान और प्रतिनिधित्व	सीमित शासन, विधि-शासन, अधिकार और विमर्शात्मक संस्थाएँ

स्रोत: चयनित प्राथमिक एवं द्वितीयक ग्रंथों के आधार पर लेखक द्वारा निर्मित सैद्धांतिक सारणी।

10. समकालीन लोकतंत्र के लिए समन्वित नैतिक रूपरेखा

10.1 गरिमा-आधारित समान नागरिकता

समन्वित रूपरेखा का प्रथम सिद्धांत है कि प्रत्येक व्यक्ति समान नैतिक मूल्य रखता है। इसका आध्यात्मिक अनुवाद आत्म-एकता, दिव्यता, करुणा या मानवता हो सकता है; उसका राजनीतिक अनुवाद मौलिक अधिकार, भेदभाव-निषेध और समान विधिक संरक्षण है। गरिमा केवल अपमान से मुक्ति नहीं, सार्वजनिक संस्थाओं में आवाज और सम्मानजनक जीवन की वास्तविक क्षमता भी है।

10.2 स्वतंत्रता के तीन आयाम

स्वतंत्रता को तीन आयामों में समझना चाहिए: दमन और अनुचित हस्तक्षेप से मुक्ति; निर्णय तथा सार्वजनिक सहभागिता की सकारात्मक क्षमता; और भय, लोभ, घृणा तथा अंधानुकरण से आंतरिक स्वराज। पहला मिल और लॉक की रक्षा करता है, दूसरा रूसो, ड्यूई और आंबेडकर की सहभागिता से जुड़ता है, और तीसरा गांधी तथा भारतीय आध्यात्मिक परंपराओं से। इन तीनों में संतुलन व्यक्ति को न तो अलग-थलग उपभोक्ता बनाता है, न अनुशासित प्रजा।



Kavya Setu

A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal

Impact Factor: 7.2

ISSN No: 3049-4176

10.3 संवादात्मक अहिंसा

असहमति लोकतंत्र की बीमारी नहीं, उसकी ज्ञानात्मक शक्ति है। पर असहमति का रूप अपमान, धमकी और असत्य हो तो सार्वजनिक विवेक नष्ट होता है। संवादात्मक अहिंसा गांधी की विरोधी के प्रति नैतिक मान्यता, जैन अनेकांतवाद की विनम्रता, मिल की मत-स्वतंत्रता और हैबरमास की समावेशी विमर्श-शर्तों को जोड़ती है। इसका अर्थ संघर्ष टालना नहीं; बल्कि कठोर असहमति को तथ्य, कारण और समान सम्मान की भाषा में व्यक्त करना है।

10.4 संवैधानिक बंधुत्व

बंधुत्व को केवल भावना न मानकर संवैधानिक अभ्यास बनाया जाना चाहिए। सार्वजनिक विद्यालय, स्थानीय निकाय, नागरिक सेवा, साझा सार्वजनिक स्थल और निष्पक्ष कल्याण संस्थाएँ विभिन्न समूहों के बीच समान सहभागिता का अनुभव बना सकती हैं। आरक्षण और प्रतिनिधित्व जैसी व्यवस्थाएँ ऐतिहासिक रूप से बहिष्कृत समुदायों को सह-निर्माता का दर्जा देती हैं। बंधुत्व तभी विश्वसनीय है जब वह न्यायपूर्ण संरचना में व्यक्त हो।

10.5 लोकतांत्रिक शिक्षा

लोकतांत्रिक शिक्षा में संविधान-ज्ञान के साथ नैतिक कल्पना, स्रोत-जाँच, तर्क, सहानुभूति और विवाद-समाधान का अभ्यास होना चाहिए। विवेकानंद का निर्भय चरित्र, टैगोर की रचनात्मकता, गांधी का सत्य-प्रयोग, आंबेडकर का आलोचनात्मक विवेक और ऊर्जू का अनुभवात्मक सहयोग मिलकर ऐसी शिक्षा का आधार दे सकते हैं। विद्यार्थी को तैयार उत्तर का अनुयायी नहीं, प्रमाण पर विचार करने वाला और दूसरे की गरिमा स्वीकार करने वाला नागरिक बनाना लक्ष्य होना चाहिए।

10.6 संस्थागत संयम और सार्वजनिक उत्तरदायित्व

नैतिक राजनीति अच्छे इरादों से अधिक माँगती है। स्वतंत्र न्यायपालिका, मुक्त मीडिया, पारदर्शिता, चुनावी निष्पक्षता, विकेंद्रीकरण और नागरिक समाज सत्ता को उत्तरदायी बनाते हैं। पदाधिकारी का आत्मसंयम प्रशंसनीय है, किंतु संस्था को इस संभावना के लिए भी तैयार रहना चाहिए कि शासक आत्मसंयमी न हो। इसीलिए आध्यात्मिक प्रेरणा और संवैधानिक नियंत्रण की संयुक्त व्यवस्था लोकतंत्र के लिए अधिक सुरक्षित है।

11. वर्तमान चुनौतियों के संदर्भ में प्रासंगिकता

11.1 ध्रुवीकरण और डिजिटल सार्वजनिक क्षेत्र

डिजिटल माध्यम ने अभिव्यक्ति और संगठन के अवसर बढ़ाए हैं, पर ध्यान-आधारित मंच क्रोध, सनसनी और समूह-पुष्टि को प्रोत्साहित कर सकते हैं। एल्गोरिदमिक दृश्यता सार्वजनिक तर्क की समानता को प्रभावित करती है। यहाँ संवादात्मक अहिंसा, तथ्य-जाँच, अनेकांतवादी विनम्रता और हैबरमासी समावेशन महत्वपूर्ण हैं। मंचों की पारदर्शिता, मीडिया साक्षरता और स्वतंत्र शोध तक पहुँच नैतिक उपदेश को संस्थागत समर्थन देती है।



Kavya Setu

A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal

Impact Factor: 7.2

ISSN No: 3049-4176

11.2 बहुसंख्यकवाद और अल्पसंख्यक अधिकार

बहुमत सरकार बनाता है, पर लोकतांत्रिक सत्य का एकाधिकार नहीं रखता। मिल और टॉकविल की चेतावनी, रॉल्स की समान स्वतंत्रता, टैगोर का विश्वमानववाद और आंबेडकर की संवैधानिक नैतिकता बहुमत को अधिकार-सीमा में रखते हैं। आध्यात्मिक एकता का प्रामाणिक अर्थ भिन्नता मिटाना नहीं, प्रत्येक भिन्न व्यक्ति में समान मूल्य देखना है।

11.3 सामाजिक-आर्थिक असमानता

अत्यधिक असमानता राजनीतिक समानता को कमजोर करती है क्योंकि धन सूचना, चुनाव, नीति और न्याय तक पहुँच को प्रभावित करता है। गांधी की ट्रस्टीशिप संपत्ति के सामाजिक दायित्व की याद दिलाती है, किंतु रॉल्स का वितरणात्मक न्याय और आंबेडकर का संरचनात्मक परिवर्तन अधिक बाध्यकारी संस्थागत उपायों की आवश्यकता स्पष्ट करते हैं। कर-न्याय, गुणवत्तापूर्ण सार्वजनिक शिक्षा, स्वास्थ्य और श्रम-सुरक्षा लोकतांत्रिक बंधुत्व की भौतिक शर्तें हैं।

11.4 पर्यावरणीय उत्तरदायित्व

जलवायु संकट लोकतंत्र की समय-सीमा और नैतिक समुदाय दोनों को विस्तृत करता है। निर्णय का प्रभाव भविष्य की पीढ़ियों और गैर-मानवीय जीवन पर पड़ता है, जिनकी वर्तमान मतदान में आवाज नहीं। भारतीय परस्पर संबद्धता और संयम, गांधी की सीमित उपभोग-दृष्टि तथा पाश्चात्य अंतरपीढ़ी न्याय मिलकर पर्यावरणीय नागरिकता का आधार दे सकते हैं।

12. निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि लोकतंत्र की जीवंतता चुनावी प्रक्रिया से आगे एक नैतिक-सांस्कृतिक आधार पर निर्भर है। भारतीय चिंतन आत्म-एकता, करुणा, अहिंसा, स्वराज, सेवा और बंधुत्व की ऐसी भाषा देता है जो नागरिक को भीतर से उत्तरदायी बनाती है। पाश्चात्य चिंतन प्राकृतिक अधिकार, सहमति, व्यक्तित्व, नागरिक संघ, न्याय और सार्वजनिक विवेक के माध्यम से सत्ता को वैधानिक तथा तर्कसंगत सीमाओं में रखता है। दोनों की श्रेष्ठ अंतर्दृष्टियाँ परस्पर पूरक हैं। साथ ही प्रत्येक परंपरा की सीमा है। आध्यात्मिक एकता सामाजिक पदानुक्रम को स्वतः समाप्त नहीं करती; समुदाय व्यक्ति को दबा सकता है; नैतिक नेतृत्व संस्थागत नियंत्रण का विकल्प नहीं। दूसरी ओर औपचारिक अधिकार वास्तविक असमानता मिटाए बिना निष्प्रभावी हो सकते हैं; अत्यधिक व्यक्तिवाद साझा उत्तरदायित्व को कमजोर कर सकता है। गांधी और आंबेडकर का संवाद इस अध्ययन का केंद्रीय निष्कर्ष मूर्त करता है: लोकतंत्र को आत्मपरिवर्तन और संरचनात्मक न्याय, अहिंसा और अधिकार, बंधुत्व और संविधान—सभी की आवश्यकता है। अतः लोकतंत्र का आध्यात्मिक आधार किसी एक धार्मिक सिद्धांत में नहीं, प्रत्येक व्यक्ति की गरिमा, सत्य के प्रति विनम्रता, दूसरे के दुःख के प्रति संवेदना और साझा हित के लिए आत्मसंयम में है। उसका नैतिक आधार समान स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय, संवाद, उत्तरदायित्व और साधनों की मर्यादा में है। जब ये मूल्य स्वतंत्र संस्थाओं, न्यायपूर्ण नीतियों और लोकतांत्रिक शिक्षा में रूपांतरित होते हैं, तभी लोकतंत्र शासन-पद्धति से आगे मानव सह-अस्तित्व की सार्थक जीवन-पद्धति बनता है।



Kavya Setu

A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal

Impact Factor: 7.2

ISSN No: 3049-4176

संदर्भ

1. आंबेडकर, बी. आर. (2011). बुद्ध और उनका धम्म. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. (मूल कृति 1957 में प्रकाशित)
2. आंबेडकर, बी. आर. (2014). जाति का विनाश: टिप्पणी सहित आलोचनात्मक संस्करण (एस. आनंद, संपादक). नवयान. (मूल कृति 1936 में प्रकाशित)
3. अरस्तू. (1998). राजनीति (सी. डी. सी. रीव, अनुवादक). हैकेट पब्लिशिंग.
4. अरविंद, श्री. (1997). मानव चक्र. श्री अरविंद आश्रम प्रकाशन विभाग.
5. ड्यूई, जे. (2004). लोकतंत्र और शिक्षा. डोवर पब्लिकेशन्स. (मूल कृति 1916 में प्रकाशित)
6. गांधी, एम. के. (2010). हिंद स्वराज और अन्य लेखन (ए. जे. परेल, संपादक; द्वितीय संस्करण). कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस. (मूल कृति 1909 में प्रकाशित)
7. हैबरमास, जे. (1996). तथ्य और मानदंड के बीच: विधि तथा लोकतंत्र के विमर्श-सिद्धांत में योगदान (डब्ल्यू. रेहग, अनुवादक). एमआईटी प्रेस. (मूल कृति 1992 में प्रकाशित)
8. लॉक, जे. (1988). शासन पर दो ग्रंथ (पी. लैसलेट, संपादक). कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस. (मूल कृति 1689 में प्रकाशित)
9. मंतेना, के. (2012). राज्य की गांधीवादी आलोचना: स्रोत, संदर्भ और परिस्थितियाँ. मॉडर्न इंटेलेक्चुअल हिस्ट्री, 9(3), 535–563. <https://doi.org/10.1017/S1479244312000194>
10. मेहता, यू. एस. (2010). लोकतंत्र, राजनीति और दैनिक जीवन की नैतिकता पर गांधी. मॉडर्न इंटेलेक्चुअल हिस्ट्री, 7(2), 355–371. <https://doi.org/10.1017/S1479244310000119>
11. मिल, जे. एस. (2003). स्वतंत्रता पर (डी. ब्रोमविच एवं जी. कातेब, संपादक). येल यूनिवर्सिटी प्रेस. (मूल कृति 1859 में प्रकाशित)
12. प्लेटो. (1992). रिपब्लिक (जी. एम. ए. ग्रूब, अनुवादक; सी. डी. सी. रीव, संशोधक). हैकेट पब्लिशिंग.
13. रॉल्स, जे. (1999). न्याय का सिद्धांत (संशोधित संस्करण). हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. (मूल कृति 1971 में प्रकाशित)
14. रॉल्स, जे. (2005). राजनीतिक उदारवाद (विस्तारित संस्करण). कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस. (मूल कृति 1993 में प्रकाशित)
15. रूसो, जे.-जे. (2012). सामाजिक अनुबंध और अन्य राजनीतिक लेखन (सी. बर्ट्रम, संपादक; क्यू. होअर, अनुवादक). पेंगुइन क्लासिक्स. (मूल कृति 1762 में प्रकाशित)
16. सेन, ए. (2005). तर्कशील भारतीय: भारतीय इतिहास, संस्कृति और पहचान पर लेखन. फरार, स्ट्रॉस एंड गिरॉक्स.
17. टैगोर, आर. (2017). राष्ट्रवाद. पेंगुइन बुक्स. (मूल कृति 1917 में प्रकाशित)
18. टेलर, सी. (1989). आत्म के स्रोत: आधुनिक पहचान का निर्माण. हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
19. टॉकविल, ए. द. (2000). अमेरिका में लोकतंत्र (एच. सी. मैन्सफील्ड एवं डी. विन्थ्रोप, अनुवादक एवं संपादक). यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस. (मूल कृति 1835–1840 में प्रकाशित)
20. विवेकानंद, स्वामी. (1989). स्वामी विवेकानंद की संपूर्ण कृतियाँ (खंड 1–9). अद्वैत आश्रम.